४० डलबर्ग रोड, लन्दन
मई २६, २००३

सन्देश संख्या ५६

पतंजलि के योगसूत्र – साधनपाद

साधनपाद

आकांक्षाविहीन जीवन शैली (साधन) द्वितीय सोपान है :

१. तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ।

क्रियायोग कुछ अभ्यास क्रियाओं के द्वारा सारे अनुबन्धनों को भस्मीभूत कर (तपः) अहंकार–मन पर ध्यान (स्वाध्याय) के माध्यम से पूर्णता (ईश्वर) का प्रत्यक्षबोध (प्रणिधान) है।

२. समाधिभावनार्थः : क्लेशतनूकरणार्थश्च ।

यह (क्रियायोग) द्वन्द्व को क्षीण करता है तथा चित्त में साम्य (समाधि भावना) विकसित करता है।

३. अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः ।

निम्नलिखित में फँसना (अभिनिवेश) दुःखभोग (क्लेश) के मूल कारण हैं :–

१. समझने की अक्षमता (अविद्या)
२. अहंभाव एवं दर्प (अस्मिता)
३. आसक्ति (राग)
४. वितृष्णा (द्वेष)

४. अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ।

समझने की अक्षमता (अविद्या) वास्तव में ''जो है'' उसे देखने की योग्यता का अभाव है। अविद्या सूक्ष्म रूप में अभिव्यक्त (तनु) हो सकती है अथवा प्रसुप्त प्रतीत हो सकती है या यत्र–तत्र बिखरी (विच्छिन्न) हो सकती है या सदैव विद्यमान रह सकती है (उदाराणाम्)।

५. (अ) अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या।

अविद्या ''जो है'' उस वस्तुस्थिति के बोध का अभाव है। अविद्या वह भ्रान्ति है जिसके कारण अनित्य नित्य, अपवित्र पवित्र, दुःख सुख तथा आत्म–अंधकार आत्म–प्रकाश के रूप में प्रतीत होते हैं।

६. (ब) दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ।

दष्टा और दृश्य (दृग्–दर्शन) में विभाजन होने के कारण अस्तित्व (आत्मा) और अहंकार (अस्मिता) के मध्य द्वैत उत्पन्न होता है।

७. (क) सुखानुशयी रागः ।

आत्म–तुष्टि की तलाश आसक्ति (राग) उत्पन्न करती है।

८. (ड) दुःखानुशयी द्वेषः ।

दुःख घृणा और वैरभाव का परिणाम है।

९. (इ) स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः ।

अहंभाव के निरन्तरता की सम्पुष्टि (स्वरसवाही) अनुबन्धन एवं सांस्कृतिक प्रभाव द्वारा होती है जो विद्वानों में भी (विदुषोऽपि) विद्यमान रहती है।

१०. ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः ।

सूक्ष्म (मनस्तात्विक) दुःखभोग का विलय अन्तर्मुखी ध्यानशीलता से होता है।

११. ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ।

मानसिक दुःखभोग का प्रवाह ध्यानपरायण जागरूकता के द्वारा घटाया जा सकता है।

१२. क्लेशमूलः कर्माशयो दृादृजन्मवेदनीयः ।

दुःखभोग का मूल कारण जाने या अनजाने में जन्म से जमे हुए अनुबन्धनों (कर्म) का संग्रह है।

१३. सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ।

इस मूल कारण (अनुबन्धनों का संग्रह) का अस्तित्व ही जीवन के कष्ट और त्रासदी के भवचक्र को चलायमान रखता है।

१४. ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ।

और उसका परिणाम है व्यसन एवं व्यथा, पुण्य और पाप ।

१५. परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः।
जिनमें समझदारी है उनके लिये व्यसन एवं व्यथा दोनों ही कष्टकारी हैं। ये दोनों ही संस्कार, गुण तथा चित्तवृत्ति के परिणाम हैं जो सतत द्वन्द्व (विरोध) उत्पन्न करते हैं। ये सभी दुःख पहुँचाते हैं।

१६. हेयं दुःखमनागतम् ।
आने वाले दुःख को कम किया जा सकता है या उससे बचा जा सकता है।

१७. द्रृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ।
द्रष्टा और दृश्य (अर्थात् ज्ञाता एवं ज्ञेय) के द्वैत के विलय से यह सम्भव है।

१८. प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ।
विशुद्ध अवलोकन (दृश्यम्) से तन्मात्राओं तथा वस्तुओं के मध्य एकात्मक लय (भूतेन्द्रियात्मकम्) का आविर्भाव होता है। इसका अभिप्राय है अनुभवों और भोगों के जाल से मुक्ति (भोगापवर्गार्थम्) तथा चैतन्यमय प्रक्रिया से उद्भूत सम्पूर्ण सामञ्जस्य में अवस्थिति।

१९. विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि ।
गुणों की चार अवस्थायें हैं :–
१. गुणातीत (विशेष) ।
२. सात्विक (अविशेष)
३. राजसिक (लिङ्गमात्र)
४. तामसिक (अलिङ्ग)

२०. द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः ।
विभेदकारी द्रष्टा (मन) के प्रदूषण बिना विशुद्ध दर्शन ही अद्वैत दर्शक (निर्मन) है। प्रत्यक्षबोध के माध्यम से ही सूक्ष्म एवं शुद्ध दर्शन संभव है।

२१. तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा ।
विशुद्ध दर्शन का अभिप्राय विभेदकारी चित्तवृत्ति का अवसान और शाश्वत चैतन्य का आविर्भाव है।

२२. कृतार्थं प्रति नमप्यनं तदन्यसाधारणत्वात् ।
अन्यत्व की एक झलक (कृतार्थम्) मन की समस्त आपाधापी समाप्त कर देता है, ङ्गिर भी कुछ खोया नहीं जाता (अन्य साधारणत्वात्) क्योंकि दैनन्दिन बोधयुक्त गतिविधियाँ बनी रहती हैं।

२३. स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः ।
खण्ड द्रा (स्व) तथा अखण्ड द्रष्टा (स्वामी) में समन्वय का अभिप्राय सहजावस्था (स्वरूपोपलब्धि) है।

२४. तस्य हेतुरविद्या ।
आन्तरिक जागरूकता का अभाव (अविद्या) ही इस समन्वय की बाधा है।

२५. तदभावात् संयोगाभावो हानं तद्दृशेःकैवल्यम् ।
बन्धन (हानम्) इस समन्वय के अभाव के कारण उत्पन्न होता है जो वास्तव में ''अन्यत्व'' की जागरूकता का अभाव है जबकि ''अन्यत्व'' की एक झलक ही मुक्ति (कैवल्यम्) है।

२६. विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः ।
विवेक, जागृति तथा स्थिरत्व बन्धन से बचने के साधन हैं।

२७. तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा ।
प्रज्ञा–चैतन्य (अर्थात् पुरूष) की ओर ले जाने वाले सात सोपान हैं।

२८. योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ।
वे हैं :–
१. योगारूढ़ रहना
२. वैदिक अनुष्ठान
३. अशुद्धता (मानसिक और शारीरिक प्रदूषण) को क्षीण करना
४. सूक्ष्म ज्ञान
५. दीप्ति
६. विवेक
७. जागृति

२९. यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणा–ध्यानसमाधयोऽावङ्गानि।

योगयुक्त जीवन के आठ अंग निम्नवत् हैं :–

१. यम : आचरण सम्बन्धी नियमन
२. नियम : बुद्धियुक्त अनुमोदन
३. आसन : मुद्रा (स्थिर होकर बैठना)
४. प्राणायाम :श्वास का नियमन
५. प्रत्याहारः अनासक्ति
६. धारणा : सार्वभौम चैतन्य की झलक
७. ध्यान : मानसिक गतिविधि से मुक्त सचेतनता
८. समाधि : साम्यावस्था अर्थात् न तो नशे में और न ही मूर्छा में बल्कि एक ऐसी अवस्था है जिसमें मन निर्मित समस्याओं का समाधान हो जाता है।

३०. अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ।

पाँच यम :

१. सत्य में प्रतिष्ठित (सत्य)
२. नशा या ज्यादती न करना (अस्तेय)
३. संग्रह या चोरी न करना (अपरिग्रह)
४. दुर्भावना या वैरभाव का अभाव (अहिंसा)
५. आसक्तिमूलक दुराचरण न करना (ब्रह्मचर्य)

३१. जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् ।

जन्म, स्थान, समय अथवा परिस्थितियों की विभिन्नता होने के बावजूद भी यम महत्वपूर्ण व्रत हैं (महाव्रतम्)।

३२. शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ।

पाँच नियम हैं :–

१. स्वच्छता (शौच)
२. संतुष्टि (संतोष)
३. आत्मसंयम या सादगी (तप या दम)
४. आत्मोपलब्धि हेतु उधारी ज्ञान का वर्जन (स्वाध्याय या दान)
५. पूर्णत्वबोध या एकात्मबोध (ईश्वरप्रणिधान या दया)

३३. वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ।

तार्किक चित्तवृत्ति में फँसने से विरोध और द्वन्द्व उत्पन्न होते हैं।

३४. वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तङ्गला इति प्रतिपक्षभावनम् ।

तर्क, लोभ, क्रोध, भ्रम तथा हिंसा चाहे वे मृदु, मध्यम या तीव्र क्यों न हों (चाहे वे स्वयं के किये हुए, या समर्थित या दूसरों के द्वारा करवाये हुए ही क्यों न हों), असीम दुःख, अज्ञान और विद्वेष उत्पन्न करते हैं।

३५. अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ।

जो अहिंसा में प्रतिष्ठित है उसके आसपास वैरभाव समाप्त हो जाता है।

३६. सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाङ्गलाश्रयत्वम् ।

सत्य में प्रतिष्ठित व्यक्ति के कार्यों के माध्यम से सम्यक् जीवनधारा के अच्छे आधार बनते हैं।

३७. अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ।

जो नशा और आदतों से मुक्त हैं उन्हें जीवन के सभी रत्न प्राप्त हो जाते हैं।

३८. ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ।

जब कोई शून्य–पुन्य–पूर्ण–चैतन्य (ब्रह्मचर्य) में प्रतिष्ठित हो जाता है तब अदम्य ऊर्जा की प्राप्ति होती है।

३९. अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः ।

जो अपरिग्रह में स्थिर है उसे परम प्रज्ञा प्राप्त होती है जिससे उसे जन्म–मृत्यु के चमत्कारों का आभास होता है।

४०. शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः ।

हर प्रकार की स्वच्छता देहबोध तथा अन्य देहों के प्रति आसक्ति से मुक्ति दिलाती है।

४१. सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च ।
('बनने' की अपेक्षा) शुद्ध अस्तित्व के माध्यम से साम्यावस्था, चित्त चांचल्य से मुक्ति तथा शाश्वतत्व के साक्षात्कार का उदय होता है।

४२. सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः ।
संतोष (अनाकांक्षा) से परम सुख उत्पन्न होता है।

४३. कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ।
सादगीपूर्ण और संयमित जीवन से देह–मन के ढाँचे की असंगति दूर हो जाती है तथा पूर्ण संगति का उदय होता है।

४४. स्वाध्यायादिदेवतासम्प्रयोगः ।
अहंवृत्ति की गतिविधि पर ध्यान करने से वह आशीर्वाद एवं पवित्रता में विलीन हो जाती है।

४५. समाधिसिद्धिरीश्वरप्राणिधानात् ।
समता में अधिष्ठित होना ही सिद्धि है और तब पूर्णत्वबोध की शुरूआत हो जाती है।

४६. स्थिरसुखमासनम् ।
आसनशैली आरामदायक होने पर ही कोई स्थिर तथा संतुलित रह सकता है।

४७. प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ।
आकांक्षाओं तथा प्रयत्नों से छुटकारा मिलने पर (शैथिल्य) ही अनन्त का आभास होता है। इसका अर्थ है द्वन्द्वरहित उदासीनता।

४८. ततो द्वन्द्वानभिघातः ।
तब 'द्वन्द्व' निष्प्रभावी हो जाते हैं।

४९. तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ।
इसके पश्चात् प्राणायाम के अभ्यास द्वारा मन से इस छुटकारा को मजबूत करें। प्राणायाम श्वास एवं प्रश्वास के मध्य एक रूकाव (एक अन्तर्मुखीकरण की प्रक्रिया) है।

५०. बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ।
प्राणायाम की अवधि, सूक्ष्मता और आवृत्ति का निर्धारण शरीर के स्वास्थ्य एवम् आयु के आधार पर किया जाता है। प्राणायाम को इस प्रकार निम्नवत् वर्गीकृत किया जा सकता है :–

अन्तर्मुखी	(जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है)
बाह्य	(अनुलोम–विलोम–भस्त्रिका)
कुम्भक	(स्तम्भ) अथवा यह पूरक, कुम्भक तथा रेचक में वृत्तिमान हो सकता है।

५१. बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः ।
एक दूसरे प्रकार का प्राणायाम है जिसमें बाह्य प्रभावों और अन्दर की अनुबन्धित प्रतिक्रियाओं का श्वास के साथ लयबद्धता में अवलोकन करना और इस प्रकार ऐसे प्रभावों तथा प्रतिक्रियाओं को पार कर जाना (इसे अजपाजप या अनापनासति कहा जाता है) है।

५२. ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ।
इसके पश्चात् प्रकाश पर पड़ा आवरण क्षीण होने लगता है (यह है ध्यान जो हमारे मानने का आवरण हटाकर जानने का प्रकाश उद्घाटित कर देता है)।

५३. धारणासु च योग्यता मनसः ।
विभेदकारी चित्तवृत्ति को तब वह प्राप्त होता है जिससे हम जीवन धारण करते हैं।

५४. स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।
वीतराग (प्रत्याहार) का अर्थ है स्वार्थपरता में न उलझना (स्वविषयासम्प्रयोगे) तथा चित्तवृत्ति (इन्द्रियाणाम्) में न फँसना (अनुकारः)।

५५. ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् ।
इसके पश्चात् चित्तवृत्ति पर पूर्ण स्वामित्व का प्रादुर्भाव होता है।